आचार्य श्री रजनीश के दस अमृत-पत्र

संत तारण तरण जयंती के इस मंगल अवसर पर हम सौ० मदन कुंवर पारख को लिखे आचार्य श्री रजनीश के दस अमृत पत्रों को प्रकाशित कर रहे हैं।

आचार्य श्री की वाणी में अनुभूति का प्रकाश और सत्य को एक जीवन्त प्रेरणा है जो राह खोजते अनेकों पथिकों के काम आ सकती है। वह प्रकाश आपके पथ को भी आलोकित कर सके यही हमारी कामना है।

यह दिव्य भेंट आपको श्री भगवानदास जी शोभालाल जी सागर के सौजन्य से की जा रही है।

संत तारण तरण जयन्ती समारोह समिति
जबलपुर (म० प्र०)

१

एक मंदिर गया था। पूजा हो रही थी। मूर्तियों के सामने सिर झुकाये जा रहे थे। एक वृद्ध साथ थे, बोले : धर्म में लोगों को अब श्रद्धा न रही। मंदिर में भी कम ही लोग दिखाई पड़ते हैं।

मैंने कहा : मंदिर में धर्म कहाँ है ?

मनुष्य भी कैसा आत्मवंचक है : अपने ही हाथों से बनाई मूर्तियों को भगवान समझ स्वयं को धोखा दे लेता है। मन से रचित शास्त्रों को सत्य समझकर तृप्ति कर लेता है।

मनुष्य के हाथों और मनुष्य के मन से जो भी रचित है वह धर्म नहीं है। मंदिरों में बैठी मूर्तियाँ भगवान की नहीं, मनुष्य की ही हैं। और शास्त्रों में लिखा हुआ मनुष्य की अभिलाषाओं और विचारणाओं का प्रतिफलन है, सत्य का अंतर्दर्शन नहीं। सत्य को शब्द देना संभव नहीं है।

सत्य की कोई मूर्ति संभव नहीं है : क्योंकि, वह असीम, अनंत और अमूर्त है। न उसका कोई रूप है, न धारणा, न नाम। आकार देते ही वह अनुपस्थित हो जाता है।

उसे पाने के लिए सब मूर्तियाँ और सब मूर्त धारणायें छोड़ देनी पड़ती हैं। स्व निर्मित कल्पनाओं के सारे जाल तोड़ देने पड़ते हैं। *वह असृष्ट तब प्रगट होता है जब मनुष्य की चेतना उसकी मनसृष्ट कारा से मुक्त हो जाती है।*

वस्तुतः, उसे पाने को मंदिर बनाने नहीं विसर्जित करने होते हैं। मूर्तियाँ गढ़नी नहीं, विलीन करनी होती हैं। आकार के आग्रह खोने पड़ते हैं ताकि निराकार का आगमन हो सके। चित्त से मूर्त के हटते ही वह अमूर्त प्रगट हो जाता है। *वह तो था ही।* केवल मूर्तियाँ और मूर्त में दब गया था। जैसे किसी कक्ष में सामान भर देने से रिक्तस्थान दब जाता है। सामान हटाओ और वह जहाँ था वहीं है।

ऐसा ही है सत्य : मन को खाली करो और वह है।

●

२

मैं तुम्हें देखता हूँ : तुम्हारे पार जो है उसे भी देखता हूँ। शरीर पर जो रुक जावें वे आँखें देखती ही नहीं हैं। शरीर कितना पारदर्शी है! सच ही, देह कितनी ही ठोस क्यों न हो उसे तो नहीं ही छिपा पाती है जो कि पीछे है।

पर, आँखें ही न हों तो बात दूसरी है। फिर तो सूरज भी नहीं है। सब खेल आँखों का है। विचार और तर्क से कोई प्रकाश को नहीं जानता है।

वास्तविक आँख की पूर्ति किसी अन्य साधन से नहीं हो सकती है। आँख चाहिये। आत्मिक को देखने के लिये भी आँख चाहिये, एक अंर्तदृष्टि चाहिये। *वह है तो सब है।* अन्यथा, न प्रकाश है : न प्रभु है।

और, जो दूसरे की देह के पार की सत्ता को देखना चाहे उसे पहले अपनी पार्थिव सत्ता के अतीत झाँकना होता है।

जहाँ तक मैं अपने गहरे में देखता हूँ, वहीं तक अन्य देहें भी पारदर्शी हो जाती हैं। जितनी दूर तक मैं अपनी जड़ता में चैतन्य का आविष्कार कर लेता हूँ उतनी ही दूर तक समस्त जड़ जगत मेरे लिये चैतन्य से भर जाता है। *जो मैं हूं, जगत भी वही है।* जिस दिन मैं समग्रता में अपने चैतन्य को जान लूँ : उसी दिन जगत नहीं रह जाता है।

स्वअज्ञान संसार है : आत्मज्ञान मोक्ष है।

इससे रोज कह रहा हूँ : इससे प्रत्येक से कह रहा हूँ : एक बार देखो कि कौन तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है? इस हड्डी मांस की देह में कौन आच्छादित है? कौन है आबद्ध तुम्हारे इस बाह्य रूप में?

इस क्षुद्र में कौन विराट विराजमान है?

कौन है यह चैतन्य? क्या है यह चैतन्य?

यह पूछे बिना : यह जाने बिना जीवन सार्थक नहीं है। मैं सब कुछ जान लूँ स्वयं को छोड़कर तो उस ज्ञान का कोई भी मूल्य नहीं है।

जिस शक्ति से पर जाना जाता है वह शक्ति स्वयं को भी जानने में समर्थ है। जो अन्य को जान सकती है वह स्वयं को कैसे नहीं जानेगी?

केवल दिशा परिवर्तन की बात है।

जो दीख रहा है उससे उस पर चलना है जो कि देख रहा है। दृश्य से द्रष्टा पर ध्यान परिवर्तन आत्मज्ञान की कुंजी है।

विचारप्रवाह में उस पर जागो जो उनका भी साक्षी है।

और, एक क्रान्ति घटित हो जाती है। कोई अवरुद्ध झरना जैसे फूट पड़ा हो ऐसे ही चैतन्य की धारा जीवन से समस्त जड़ता को बहा ले जाती है।

३

रात्रि में घूमने निकला था। गांव का ऊबड़खाबड़ रास्ता था। साथ एक साधु थे। बहुत उन्होंने यात्रा की थी। शायद ही कोई तीर्थ था जहां वे नहीं हो आये थे। प्रभु को पाने का वे मार्ग खोज रहे थे।

उस रात्रि उन्होंने मुझसे भी पूछा था : प्रभु को पाने का मार्ग क्या है ?

यह प्रश्न उन्होंने औरों से भी पूछा था। मार्ग भी धीरे धीरे उन्हें बहुत ज्ञात हो गये थे। पर प्रभु से जो दूरी थी वह उतनी ही बनी थी। ऐसा भी नहीं था कि इन मार्गों पर वे चले नहीं थे। यथाशक्ति प्रयास भी किया था। पर हाथ आया था केवल चलना ही। पहुँचना नहीं हुआ था। पर अभी मार्गों से ऊबे नहीं थे। और नयों की तलाश जारी थी।

मैं थोड़ी देर चुप ही रहा था। फिर कहा था : जो मैं स्वयं हूँ उसे पाने का कोई भी मार्ग नहीं है। मार्ग पर को और दूर को पाने के होते हैं। जो निकट है, निकट ही नहीं, जो मैं ही हूँ, वह मार्ग से नहीं मिलता है। मार्ग के योग्य वहाँ अन्तराल ही नहीं है।

फिर, पाना उसे होता है जिसे खोया हो। प्रभु को क्या खोया जा सकता है ?

जो खोया जा सके वह स्वरूप नहीं हो सकता है।

वह केवल विस्मृत है।

इसलिये, कहीं जाना नहीं है। केवल स्मरण करना है। कुछ करना नहीं है। केवल जानना है।

और, जानना ही पहुँचना है। जानना है कि यह मैं कौन हूँ ? और यह ज्ञान ही प्रभु उपलब्धि है।

एक दिन जब सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं, और कोई भी मार्ग कहीं ले जाता प्रतीत नहीं होता है तब दीखता है कि जो भी मैं कर सकता हूँ वह सत्य तक नहीं ले जायेगा। कोई क्रिया मैं के रहस्य को नहीं खोलेगी, क्योंकि क्रियामात्र बाहर ले जाती है।

कोई क्रिया सत्ता तक नहीं लाती है। जहां क्रिया का अभाव है वहां सत्ता प्रगट हो जाती है।

कोई क्रिया उसे नहीं देगी क्योंकि वह क्रियाओं के भी पूर्व है।

कोई मार्ग वहाँ के लिये नहीं है क्योंकि वह तो यहां है।

४

अर्ध रात्रि बीत गई है। एक सभा से लौटा हूँ। वहां कोई कह रहे थे : प्रभु को पुकारो। उसका नाम स्मरण करो। निरंतर बुलाने से वह अवश्य सुनता है।

मुझे याद आया : कबीर ने कहा है : क्या ईश्वर बहरा हो गया है ?

शायद, कबीर के शब्द उन तक नहीं पहुँचे हैं।

फिर, उन्हें कहते सुना : दस आदमी सो रहे हैं। किसी ने पुकारा : देवदत्त। तो देवदत्त उठ आता है। ऐसा ही प्रभु के संबंध में भी है। उसका नाम पुकारो वह अवश्य सुनता है।

उनकी बातें सुन मुझे हंसी आने लगी थी। प्रथम तो यह कि प्रभु नहीं हम सो रहे हैं। वह तो नित्य जाग्रत है। उसे नहीं वरन् हमें जागना है। फिर सोये हुये जाग्रत को जगावें तो बड़े मजे की बात है। उसे पुकारना नहीं, उसकी ही पुकार हमें सुननी है। यह मौन में होगा : परिपूर्ण निस्तरंग चित्त में होगा : जब चित्त में कोई ध्वनि नहीं है तब उसका नाद उपलब्ध होता है।

पूर्ण मौन ही एकमात्र प्रार्थना है। प्रार्थना कुछ करना नहीं है : वरन् चित्त जब कुछ भी नहीं कर रहा तब वह प्रार्थना में है।

प्रार्थना क्रिया नहीं, अवस्था है।

द्वतीय, प्रभु का कोई नाम नहीं है। न उसका कोई रूप है। इसलिये उसे बुलाने और स्मरण करने का कोई उपाय भी नहीं है। सब नाम, सब रूप

कल्पित हैं, वे सब मिथ्या हैं। उनसे नहीं, उन्हें छोड़कर सत्य तक पहुंचना होता है

जो सब छोड़ने का साहस करता है, वह उसे पाने की शर्त पूरी करता है।

५

मैं ईश्वर भीरु नहीं हूँ। भय ईश्वर तक नहीं ले जाता है। उसे पाने की भूमिका अभय है।

मैं किसी अर्थ में श्रद्धालु भी नहीं हूँ। श्रद्धा मात्र अंधी होती है। और, अंधापन परम सत्य तक कैसे ले जा सकता है ?

मैं किसी धर्म का अनुयायी भी नहीं हूँ। क्योंकि, धर्म को विशेषणों में बाँटना संभव नहीं है : वह एक और अविभक्त है।

कल जब मैं यह कहा तो किसी ने पूछा : फिर क्या आप नास्तिक हैं ?

मैं न नास्तिक हूँ। न आस्तिक ही हूँ। वे भेद सतही और बौद्धिक हैं। सत्ता से उनका कोई संबंध नहीं है। सत्ता "है" और "न है" में विभक्त नहीं है। वह भेद मन का है। इसलिये, नास्तिकता आस्तिकता दोनों

मानसिक हैं। आत्मिक को वे नहीं पहुँच पाती हैं। आत्मिक विधेय और नकार दोनों का अतिक्रमण कर जाता है।

'जो है' वह विधेय और नकार के अतीत है।

या, फिर वहाँ दोनों एक हैं और उनमें कोई भेदरेखा नहीं है। बुद्धि से स्वीकार की गई किसी भी धारणा की वहाँ कोई गति नहीं है। वस्तुतः, आस्तिक को आस्तिकता छोड़नी पड़ती है और नास्तिक को नास्तिकता तब कहीं वे सत्य में प्रवेश कर पाते हैं। वे दोनों ही बुद्धि के आग्रह हैं। आग्रह आरोपण है। सत्य कैसा है यह निर्णय नहीं करना होता है वरन् अपने को खोलते ही वह जैसा है उसका दर्शन हो जाता है।

यह स्मरण रखें कि सत्य का निर्णय नहीं, दर्शन करना होता है।

जो सब बौद्धिक निर्णय छोड़ देता है, जो सब तार्किक धारणायें छोड़ देता है, जो समस्त मानसिक आग्रह अनुमान छोड़ देता है वह उस निर्दोष चित्त स्थिति में सत्य के प्रति अपने को खोल रहा है जैसे फूल प्रकाश के प्रति अपने को खोलते हैं।

इस खोलने में दर्शन की घटना संभव होती है।

इसलिये, जो न आस्तिक है, न नास्तिक है, उसे मैं धार्मिक कहता हूँ। धार्मिकता भेद से अभेद में छलांग है।

विचार जहाँ नहीं, निर्विचार है : विकल्प जहाँ नहीं, निर्विकल्प है : शब्द जहाँ नहीं, शून्य है वहाँ धर्म में प्रवेश है।

६

"मैं उपदेशक नहीं हूँ। कोई उपदेश, कोई शिक्षा मैं नहीं देना चाहता हूँ। अपना कोई विचार तुम्हारे मन में डालने की मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। सब विचार व्यर्थ हैं और धूलिकणों की भांति वे तुम्हारी सत्ता को ढँक लेते हैं। सब विचार बाह्य हैं और वस्त्रों की भांति वे तुम्हें आच्छादित कर लेते हैं। और, फिर तुम जो नहीं हो वैसे दिखाई पड़ने लगते हो। और जो तुम नहीं जानते हो वह ज्ञात सा मालुम होने लगता है। यह बहुत आत्मघातक है।

विचारों से अज्ञान मिटता नहीं, केवल छिप जाता है। ज्ञान को जगाने के लिये अज्ञान को उसकी पूरी नग्नता में जानना जरूरी है। इससे विचारों के वस्त्रों में अपने को मत ढाँको। समस्त वस्त्रों और आवरणों को अलग कर दो ताकि तुम अपनी नग्नता और रिक्तता से परिचित हो सको। वह परिचय ही तुम्हें अज्ञान के पार ले जाने वाला सेतु बनेगा। अज्ञान के बोध का तीव्र संताप ही क्रांति का बिन्दु है।

इससे मैं तुम्हें ढाँकना नहीं, उघाड़ना चाहता हूँ। जरा देखो : तुमने कितनी अंधी श्रद्धाओं और धारणाओं और कल्पनाओं में अपने को छिपा लिया है। और इन मिथ्या सुरक्षाओं में तुम अपने को सुरक्षित समझ रहे हो। यह सुरक्षा नहीं, आत्मवंचना है।

मैं तुम्हारी इस निद्रा को तोड़ना चाहता हूँ। स्वप्न नहीं, केवल सत्य ही एकमात्र सुरक्षा है।

और, तुम यदि स्वप्नों को छोड़ने का साहस करो तो सत्य को पाने के अधिकारी हो जाते हो। कितना सस्ता सौदा है। सत्य को पाने को और कुछ नहीं केवल स्वप्न ही छोड़ने पड़ते हैं।

विचारों की, स्वप्नों की कल्पना चित्रों की मूर्च्छा को तोड़ना है। उससे जोकि दीख रहा है उस पर जागना है जोकि देख रहा है।

वह द्रष्टा ही सत्य है, उसे पा लो तो समझो कि जीवन पा लिया है।"

यह किसी से कह रहा था। वे सुनकर विचारमग्न हो गये। मैंने उनसे कहा : आपतो सोच में पड़ गये। इसीसे तो मैं जागने की बात कर रहा हूँ। वही तो निद्रा है।

●

७

एक सन्ध्या की बात है। गेलीली झील पर तूफान आया हुआ था। एक नौका डूबती डूबती हो रही थी। बचाव का कोई उपाय नहीं दीखता था। यात्री और मांझी घबड़ा गये थे। आंधियों के थपेड़े प्राणों को हिला रहे थे। पानी की लहरें भीतर आनी शुरू हो गई थीं और किनारे पहुँच से बहुत दूर थे। पर इस गरजते तूफान में भी नौका के एक कोने में एक व्यक्ति सोया हुआ था। शान्त और निश्चिन्त। उसके साथियों ने उसे उठाया। सबकी आंखों में आसन्न मृत्यु की छाया थी।

उस व्यक्ति ने उठकर पूछा—इतने भयभीत क्यों हो? जैसे भय की कोई बात ही न थी। उसके साथी अवाक् रह गये। उनसे कुछ कहते भी

तो नहीं बना। तभी उसने पुनः कहा—"क्या अपने आप पर बिल्कुल भी आस्था नहीं है?" इतना कहकर वह शान्ति और धीरज से उठा और नाव के एक किनारे पर गया। तूफान आखिरी चोटें कर रहा था। उसने उस विक्षुब्ध हो गई झील से जाकर कहा— "शान्ति, शान्त हो जाओ। पीस बी स्टिल।"

तूफान जैसे कोई नटखटी बच्चा था। ऐसे ही उसने कहा था : "शान्त हो जाओ।"

यात्री समझे होंगे कि यह क्या पागलपन है। तूफान क्या किसी की मानेगा। लेकिन उनकी आँखों के सामने ही तूफान सो गया था और झील ऐसी शान्त हो गई थी कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है।

उस व्यक्ति की बात मान ली गई थी।

वह व्यक्ति था जीसस क्राईस्ट और यह बात है दो हजार वर्ष पुरानी, पर मुझे यह घटना रोज ही घटती मालुम होती है।

क्या हम सभी निरन्तर एक तूफान-एक अशान्ति से नहीं घिरे हुए हैं? क्या हमारी आँखो में भी निरन्तर आसन्न मृत्यु की छाया नहीं है? क्या हमारे भीतर चित की झील विक्षुब्ध नहीं है? क्या हमारी जीवन नौका भी प्रतिक्षण डूबती डूबती नहीं मालूम होती है?

तब क्या उचित नहीं है कि हम अपने से पूछें—"इतने भयभीत क्यों हो?" क्या अपने आप पर बिल्कुल भी आस्था नहीं है? और फिर अपने भीतर झील पर जाकर कहें "शान्ति, शान्त हो जाओ।"

मैं यह कहकर देखा हूँ और पाया है कि तूफान सो जाता है। केवल शान्त होने के भाव करने की ही बात है और शान्ति आ जाती है। अपने भाव से प्रत्येक अशान्त है। अपने भाव से शान्त भी हो सकता है। शान्ति

उपलब्ध करना अभ्यास की बात नहीं है। केवल सद्भाव ही पर्याप्त है। शान्ति तो हमारा स्वरूप है। घनी अशान्ति के बीच भी एक केन्द्र पर हम शान्त हैं। एक व्यक्ति यहाँ तूफान के बीच भी निश्चिन्त सोया हुआ है। इस शान्त, निश्चल, निश्चिन्त केन्द्र पर ही हमारा वास्तविक होना है। उसके होते हुये भी हम अशान्त हो सके हैं, यही आश्चर्य है। उसे वापिस पा लेने में तो कोई आश्चर्य नहीं है।

शान्त होना चाहते हो तो इसी क्षण अभी और यहीं शान्त हो सकते हो। अभ्यास भविष्य में फल लाता है, सद्भाव वर्तमान में ही! सद्भाव अकेला वास्तविक परिवर्तन है।

●

८

ज्ञान के लिये पिपासा है। कितनी प्यास है? प्रत्येक में उसे मैं देखता हूँ। कुछ भीतर प्रज्वलित है जो शान्त होना चाहता है। और मनुष्य कितनी दिशाओं में खोजता है। शायद अनन्त जन्मों में उसकी यह खोज चलती है। किसी स्वर्ण मृग को खोजता उसका चित्त भटकता ही रहता है। पर हर चरण पर निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं आता है। कोई रास्ता पहुँचता हुआ नहीं प्रतीत होता है। गति होती है पर गन्तव्य आता हुआ नहीं दीखता है। क्या रास्ते कहीं भी नहीं ले जाते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना है। जीवन स्वयं उत्तर है। क्या अनन्त मार्गों और दिशाओं में चलकर उत्तर नहीं मिल गया है?

क्या सच ही उत्तर नहीं मिल गया है?

बौद्धिक उत्तर खोजने में, उसके धुयें में, वास्तविक उत्तर खो जाता है। बुद्धि चुप हो तो अनुभूति बोलती है। विचार मौन हों तो विवेक जागृत हो जाता है।

वस्तुतः जीवन के आधारभूत प्रश्नों के उत्तर नहीं होते हैं। *समस्यायें हल नहीं होतीं गिर जातीं हैं।* केवल पूछने और शून्य हो जाने की बात है। बुद्धि केवल पूछ सकती है। समाधान उससे नहीं, शून्य से आता है।

समाधान शून्य से आता है। इस सत्य को जानते ही एक नये आयाम पर जीवन का उद्घाटन प्रारम्भ हो जाता है। चित्त की इस स्थिति का नाम समाधि है।

पूछें और चुप हो जावें। बिल्कुल चुप। और समाधान को आने दें। उसे फूलने दें। और चित्त की इस निस्तरंग स्थिति में दर्शन होता है उसका *जो है। जो मैं हूँ।*

स्वयं को जाने बिना ज्ञान की प्यास नहीं मिटती है।

सब मार्ग छोड़कर स्वयं पर पहुँचना होता है। *चित्त जब किसी मार्ग पर नहीं है तब स्वयं में है।* और स्वयं को जानना ज्ञान है। शेष सब जानकारी है। क्योंकि परोक्ष है। विज्ञान ज्ञान नहीं है। वह सत्य को नहीं केवल उपयोगिता को जानना है। सत्य केवल अपरोक्ष ही जाना जा सकता है। और ऐसी सत्ता केवल स्वयं की है। जो अपरोक्ष जानी जा सकती है।

चित्त जिस क्षण खोज की व्यर्थता जानकर चुप और थिर रह जाता है, उसी क्षण अनन्त के द्वार खुल जाते हैं।

दिशा शून्य चेतना प्रभु में विराजमान हो जाती है। और ज्ञान की प्यास का अंत केवल प्रभु में ही है।

●

६

"मैं कौन हूँ" यह अपने से पूछता था। कितने दिवस रात्रि यह पूछते बीते, अब उनकी कोई गणना भी तो सम्भव नहीं है। बुद्धि उत्तर देती थी : सुने हुये : संस्कार जन्य। वे सब बासे उधार और मृत थे। उनसे तृप्ति नहीं होती थी। सतह पर कहीं गूंजकर वे विलीन हो जाते थे। अंतःरात्मा उनसे अछूती रह जाती थी। गहराई में उनकी कोई ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती थी। उत्तर बहुत थे, पर उत्तर नहीं था। और मैं उनसे अस्पर्शित रह जाता था। प्रश्न जहाँ पर था, वहाँ उनकी पहुँच नहीं थी।

फिर यह दीखा : प्रश्न कहीं केन्द्र पर था : उत्तर परिधि पर थे। प्रश्न अपना था, उत्तर पराये थे। प्रश्न अंतस् में जागा था : समाधान बाहर से आरोपित था।

और यह दीखना ही क्रान्ति बन गया।

एक नई दिशा उद्घाटित हो गई।

बुद्धि के समाधान व्यर्थ हो गये। समस्या से उनकी कोई संगति नहीं थी। एक भ्रम भग्न हो गया था। और कितनी मुक्ति मालुम हुई थी।

जैसे बंद द्वार खुल गया हो या कि अचानक अंधेरे में प्रकाश हो गया हो, ऐसा मालुम हुआ था। बुद्धि उत्तर देती थी, यही भूल थी। उन तथा कथित उत्तरों के कारण वास्तविक उत्तर ऊपर नहीं आ पाता था। कोई सत्य ऊपर आने को तड़फ रहा था। चेतना की गहराईयों में कोई बीज भूमि को तोड़कर प्रकाश के दर्शन के लिये मार्ग खोज रहा था। बुद्धि बाधा थी।

यह दीखा तो उत्तर गिरने लगे। बाहर से आया ज्ञान वाष्प होने लगा। प्रश्न और गहरा गया। कुछ किया नहीं, केवल देखता रहा। देखता रहा। कुछ अभिनव घटित हो रहा था। मैं तो अवाक् था। करने को था ही क्या, मैं जैसे बस दर्शक ही था। परिधि की प्रतिक्रियायें झड़ रहीं थीं, मिट रहीं थीं, न हो रहीं थीं। और केन्द्र अब पूरी तरह झंकृत हो उठा था।

'मैं कौन हूँ', एक ही प्यास से समग्र व्यक्तित्व स्पंदित हो उठा था।

कैसी आंधी थी वह कि स्वाँस स्वाँस उसमें कंपित हो गई थी।

'कौन हूँ मैं'? एक तीर की भांति प्रश्न सब कुछ चीरता भीतर चल रहा था।

स्मरण करता हूँ कितनी तीव्र प्यास थी। सारे प्राण ही तो प्यास में बदले गये थे। सब कुछ जल रहा था। और एक अग्नि शिखा की भांति प्रश्न भीतर खड़ा था : कौन हूँ मैं ?

और आश्चर्य कि बुद्धि बिलकुल चुप थी। निरंतर बहने वाले विचार नहीं थे। यह क्या हुआ था कि परिधि नितांत निष्पंद थी। कोई विचार नहीं था। कोई संस्कार नहीं था।

मैं था और प्रश्न था, नहीं, नहीं : मैं ही प्रश्न था।

और फिर विस्फोट हो गया। एक क्षण में सब परिवर्तित हो गया। प्रश्न गिर गया था। किसी अज्ञात आयाम से समाधान आ गया था।

सत्य क्रम से नहीं, विस्फोट से उपलब्ध होता है।

उसे लाया नहीं जाता है। सत्य आता है।

शब्द नहीं, शून्य समाधान है। निरुत्तर हो जाने में उत्तर है।

कल कोई पूछता था, और रोज ही कोई पूछता है : 'वह उत्तर क्या है ?'

मैं कहता हूँ : उसे मैं कहूं तो वह अर्थहीन है उसका अर्थ उसे स्वयं पाने में है।

१०

मैंने सुना है :

एक फकीर भीख मांगने निकला था। वह बूढ़ा हो गया था और आंख से उसे कम दिखता था। उसने एक मस्जिद के सामने आवाज लगाई थी। किसी ने उससे कहा : आगे बढ़। यह ऐसे आदमी का मकान नहीं है, जो तुझे कुछ दे सके। फकीर ने कहा : आखिर इस मकान का मालिक कौन है, जो किसी को कुछ नहीं देता ? वह आदमी बोला : पागल, तुझे यह भी पता नहीं है कि यह मस्जिद है। इस घर का मालिक स्वयं परमपिता परमात्मा है।

फकीर ने सिर उठाकर मस्जिद पर एक नजर डाली और उसका हृदय एक जलती हुई प्यास से भर गया। कोई उसके भीतर बोला : अफसोस है इस दरवाजे से आगे बढ़ना। आखिरी दरवाजा आ गया : *इसके आगे और दरवाजा कहां है।*

उसके भीतर एक संकल्प घना हो गया। अडिग चट्टान की भांति उसके हृदय ने कहा : यहां से खाली हाथ नहीं लौटूँगा। *जो यहां से खाली हाथ लौट गये उनके भरे हाथों का क्या मूल्य है।*

वह उन्हीं सीढ़ियों के पास रुक गया। उसने अपने खाली हाथों को आकाश की तरफ फैला दिया। वह प्यासा था और प्यास ही प्रार्थना है।

दिन आये और गये। माह आये और गये। ग्रीष्म बीती, वर्षा बीती, सर्दियाँ भी बीत चलीं। एक वर्ष पूरा हो रहा था। उस बूढ़े के जीवन की म्याद भी पूरी हो गई थी। पर अन्तिम क्षणों में लोगों ने उसे नाचते देखा था।

उसकी आंखें एक अलौकिक दीप्ति से भर गईं थीं। उसके वृद्ध शरीर से प्रकाश झर रहा था।

उसने मरने के पूर्व एक व्यक्ति से कहा था—जो मांगता है उसे मिल जाता है। केवल अपने को समर्पित करने का साहस चाहिये।

अपने को समर्पित करने का साहस।

अपने को मिटा देने का साहस।

शून्य होने का साहस।

जो मिटने को राजी है, वह पूरा हो जाता है। जो मरने को राजी है, वह जीवन को पा लेता है।

●

साधना प्रिन्टिग प्रेस, मिलौनीगंज, जबलपुर। फोन नं. २१२